

प्रतिक्रमण के गूढ प्रश्नोत्तर

श्री गौतमचन्द्र जैन

प्रश्न प्रतिक्रमण आवश्यक क्यों है?

उत्तर प्रतिक्रमण साधकजीवन की एक अपूर्वकला है तथा जैन साधना का प्राणतत्त्व है। ऐसी कोई भी क्रिया नहीं, जिसमें प्रमादवश दोष न लग सके। उन दोषों से निवृत्ति हेतु प्रतिक्रमण करना चाहिये। प्रतिक्रमण में साधक अपने जीवन की प्रत्येक प्रवृत्ति का अवलोकन, निरीक्षण करते हुए इन दोषों से निवृत्त होकर हल्का बनता है।

प्रतिक्रमण करना आवश्यक है, क्योंकि तन का रोग अधिक से अधिक एक जन्म तक ही पीड़ा दे सकता है, किन्तु मन का रोग एक बार प्रारम्भ होने के बाद, यदि व्यक्ति असावधान रहा तो हजारों ही नहीं, लाखों जन्मों तक परेशान करता है।

प्रश्न प्रतिक्रमण शब्द का अर्थ स्पष्ट कर उसके आठ पर्यायवाची बताइए।

उत्तर प्रतिक्रमण का शाब्दिक अर्थ है- पीछे लौटना, अर्थात् साधक जिस क्रिया द्वारा अतीत में प्रमादवश किए हुए दोषों, अपराधों एवं पापों का प्रक्षालन करके शुद्ध होता है, वह प्रतिक्रमण कहलाता है। आचार्य हेमचन्द्रानुसार- सावद्यप्रवृत्ति में जितने आगे बढ़ गए थे उतने ही पीछे हटकर एवं शुभयोग रूप स्वस्थान में अपने आपको लौटा लाना प्रतिक्रमण है।

श्रुतकेवली भद्रबाहु का मन्तव्य है कि प्रतिक्रमण केवल अतीत में लगे दोषों की ही विशुद्धि नहीं करता, अपितु वह वर्तमान और भविष्यकाल के दोषों की विशुद्धि भी करता है। आचार्य भद्रबाहु ने प्रतिक्रमण के आठ पर्यायवाची नाम बताए हैं-

१. प्रतिक्रमण- सावद्य योग से विरत होकर आत्मशुद्धि में लौट आना।
२. प्रतिचरणा- अहिंसा, सत्य आदि संयम में सम्यक् रूप से विचरना।
३. परिहरणा- सभी प्रकार के अशुभ योगों का परित्याग करना।
४. वारणा- विषय भोगों से स्वयं को रोकना।
५. निवृत्ति- अशुभ प्रवृत्ति से निवृत्त होना।
६. निंदा- पूर्वकृत अशुभ आचरण के लिए पश्चात्ताप करना।
७. गर्हा- आचार्य, गुरु आदि के समक्ष अपने अपराधों की निंदा करना।
८. शुद्धि- कृत दोषों की आलोचना, निंदा, गर्हा तथा तपश्चरण द्वारा आत्मशुद्धि करना।

- प्रश्न** जब प्रतिदिन प्रातः सायं प्रतिक्रमण किया जाता है तब फिर पाक्षिक, चातुर्मासिक आदि प्रतिक्रमण की क्या आवश्यकता है?
- उत्तर** जिस प्रकार प्रतिदिन मकान की सफाई की जाती है फिर भी पर्व दिनों में वह विशेष रूप से की जाती है। वैसे ही प्रतिदिन प्रतिक्रमण करने पर भी पर्व दिनों में विशेष जागरूकता से शेष रहे अतिचारों का निरीक्षण एवं परिमार्जन किया जाता है। जैसे कि प्रशासनिक क्षेत्र में भी विशेष अभियान चलाकर सरकारी कार्यों एवं लक्ष्यों की पूर्ति की ही जाती है, यद्यपि ये कार्य सरकारी कार्यालयों में प्रतिदिन किए जाते हैं।
- प्रश्न** वर्तमान चौबीसी के शासनों में प्रतिक्रमण की परम्परा का उल्लेख कीजिये।
- उत्तर** प्रथम एवं अंतिम तीर्थंकर की परम्परा के साधु अतिचार दोष लगे या न लगे किन्तु दोष शुद्धि हेतु प्रतिदिन दोनों संध्याओं को प्रतिक्रमण करते हैं किन्तु मध्य के बाईस तीर्थंकरों की परम्परा के साधु-साध्वी दोष लगने पर ही प्रतिक्रमण करते हैं। क्योंकि प्रथम एवं अंतिम तीर्थंकरों के शिष्य चंचल चित्त वाले, मोही और जड़बुद्धि वाले होते हैं तथा मध्यवर्ती बाईस तीर्थंकरों के शिष्य दृढ़ बुद्धि वाले पवित्र, एकाग्रमन वाले तथा शुद्ध चरित्र वाले होते हैं। इस प्रकार प्रथम एवं अंतिम तीर्थंकर के शासन में प्रतिक्रमण अवस्थित (अनिवार्य) कल्प है जबकि मध्यवर्ती बाईस तीर्थंकरों के शासन में यह अनवस्थित (ऐच्छिक) कल्प था।
- प्रश्न** दिनभर पापकारी प्रवृत्तियाँ करते रहने पर भी सुबह-शाम प्रतिक्रमण करने से क्या लाभ?
- उत्तर** जिस प्रकार कुएँ से डाली गई बाल्टी की रस्सी या आकाश में उड़ाई गई पतंग की डोरी अपने हाथ में हो तो बाल्टी एवं पतंग को हम प्रयास करके पुनः प्राप्त कर सकते हैं। रस्सी या डोरी को पूर्णतया हाथ से छोड़ने पर तो बाल्टी एवं पतंग को हम खो देंगे। आध्यात्मिक क्षेत्र में भी यही नियम लागू होता है। प्रतिदिन किए गए अभ्यास से हमारे में संस्कार तो सृजित होते ही हैं, पापाचरण में लगी आत्मा को हम इन सृजित संस्कारों के माध्यम से कभी न कभी तो तप-संवर रूपी करणी से शुद्ध कर सकते हैं।
- प्रश्न** सॉरी (Sorry) बोलना एवं प्रतिक्रमण करना इन दोनों में क्या सम्बन्ध है, जैन जगत् में सॉरी के अनुरूप कौनसा शब्द है?
- उत्तर** व्यवहार जगत् में कोई गलती हो जाने पर मोटे तौर पर हम सॉरी बोलकर उस गलती का निवारण करते हैं। उसी प्रकार प्रतिक्रमण द्वारा हम प्रभु के चरणों में अपने अपराध/दोष/अतिचार गलती को स्वीकार करते हैं और 'तस्स मिच्छा मि दुक्कडं' पद से उन गलतियों/भूलों को हृदय से स्वीकार करके क्षमा माँगते हैं। जैन जगत् में सॉरी के अनुरूप 'मिच्छा मि दुक्कडं' शब्द है।

प्रश्न जैन दर्शन में शरीर विज्ञान के सिद्धांतों का समुचित पालन किया जाता है। प्रतिक्रमण के संदर्भ में स्पष्ट कीजिये।

उत्तर कायोत्सर्ग की साधना हेतु तस्सउत्तरी का पाठ बोलना आवश्यक है एवं इसमें शरीर पर से ममता का त्याग किया जाता है। तस्सउत्तरी के पाठ में यह ध्वनित होता है कि शरीर के प्राकृतिक कार्यों को नहीं रोका जा सकता है तथा शरीर के बारह प्रकार के व्यापारों का आगार रखकर ही कायोत्सर्ग साधना की प्रतिज्ञा की जाती है जैसे-छींक आना या सूक्ष्म रूप से अंग का हिलना आदि।

प्रश्न श्रावक के बारह व्रतों में एक से आठ तक के व्रत जीवन पर्यंत तक के होते हैं, जबकि ९-१०-११ वें व्रतों का काल सीमित समय का होता है। काल में इस अंतर का कारण स्पष्ट कीजिये।

उत्तर ९वां व्रत सामायिक व्रत है। इसका काल एक दो मुहूर्त या नियम पर्यंत होता है। १०वें देशावकाशिक व्रत में पहले जिन (छठे, सातवें) व्रतों में जीवनपर्यंत मर्यादाएँ की हैं उनकी संक्षेप में अहोरात्रि के लिए मर्यादा करते हैं। ११वाँ प्रतिपूर्ण पौषध व्रत का काल चारों आहार छोड़कर उपवास सहित आठ प्रहर का होता है। श्रावक एक से आठवाँ व्रत संसार के कार्यों में रहते हुए भी जीवन-पर्यंत धारण कर सकता है। नवमाँ, दसवाँ और ग्यारहवाँ व्रत साधना रूप है, इनको श्रावक जीवन पर्यंत धारण नहीं कर सकता, अतः संक्षिप्त साधना सामायिक के रूप में एवं विशेष साधना दया या पौषध के रूप में अहोरात्रि प्रमाण में करता है। दसवाँ व्रत छठे एवं सातवें व्रतों का संक्षिप्त रूप है। अतः यह भी श्रावक के लिए अहोरात्रि प्रमाण का होता है, क्योंकि इन व्रतों की आराधना करते हुए श्रावक गृहस्थ के कर्तव्यों का व्यवस्थित निर्वाह नहीं कर सकता है। अतः ये व्रत काल की सीमित मर्यादा से ही पालन किए जा सकते हैं, आजीवन नहीं।

प्रश्न सामायिक लेने से पूर्व तीन बार विधिवत् वंदन करते हैं, पारते समय नहीं करते हैं। ऐसा क्यों?

उत्तर सामायिक लेने से पूर्व उद्देश्य यह है कि हम गुरु महाराज से आज्ञा लेकर आस्रव को छोड़कर संवर में जा रहे हैं। जबकि सामायिक पारते हैं तो संवर को छोड़कर पुनः आस्रव की ओर बढ़ते हैं, इसीलिए पारते समय वंदन नहीं करते हैं। क्योंकि संवर से आस्रव की ओर जाने के लिये गुरु-भगवंतों की आज्ञा नहीं है।

प्रश्न मिथ्यादृष्टि और सम्यग्दृष्टि दोनों के प्रतिक्रमण करने में क्या अंतर है?

उत्तर सम्यग्दृष्टि यदि प्रतिक्रमण करेगा तो उसकी क्रियाओं से पापों का क्षय अर्थात् कर्मों की निर्जरा तथा पुण्य का बन्ध होगा, जबकि मिथ्यादृष्टि प्रतिक्रमण करेगा तो पुण्य का बंध तो होगा, पर कर्मों की निर्जरा नहीं होगी।

प्रश्न प्रतिक्रमण में 'इच्छामि खमासमणो' पाठ का उद्देश्य क्या है?

उत्तर इस पाठ का उद्देश्य शिष्य को गुरु के प्रति कर्तव्य की जानकारी प्रदान करना, उनकी सुखसाता की

पृच्छा करना, अपने से हुई जानी-अनजानी अविनय आशातना की क्षमायाचना, दिवस भर में लगे अतिचारों की निंदा करना, स्वयं में उन जैसे गुण विकसित हो ऐसी कामना करना आदि है। इसे वंदना का उत्कृष्ट रूप बताया है।

प्रश्न श्रावक के बारह व्रतों में कितने स्वतंत्र हैं एवं कितने परतंत्र है?

उत्तर प्रथम से ग्यारहवाँ व्रत स्वतन्त्र एवं बारहवाँ व्रत परतन्त्र है। क्योंकि बारहवें व्रत की साधना सुपात्र दान देने से संबंधित है। सुपात्र अन्य होता है, जिसके उपलब्ध होने पर ही बारहवाँ व्रत सम्पन्न होता है।

प्रश्न उत्कृष्ट वंदना में दोनों घुटनों को ऊँचा क्यों किया जाता है?

उत्तर यह आसन गर्भाशयवत् कोमलता एवं विनय का प्रतीक है। इसलिए विनयसम्पन्नता के प्रकटीकरण की भावना से ऐसे आसन का कथन पूर्वाचार्यों द्वारा किया गया है।

प्रश्न पाँच पदों की वंदना पंचांग नमाकर घुटने झुकाकर क्यों की जाती है?

उत्तर चूँकि यह आसन शरणागति अर्थात् अर्पणता का सूचक है। “परमभावे तिष्ठति असौ परमेष्ठी।” ये हमारे लिए परमाराध्य हैं। इनकी शरण ग्रहण करके ही हम भी परमभाव में प्रतिष्ठित हो सकते हैं। अतः यह वंदना इसी आसन (मुद्रा) में की जाती है।

प्रश्न प्रतिक्रमण के छह आवश्यकों को देव-गुरु-धर्म में विभाजित कीजिये।

उत्तर देव का- द्वितीय चतुर्विंशतिस्तव । गुरु का- तीसरा वंदना। धर्म का- प्रथम, चतुर्थ, पंचम, षष्ठ (सामायिक, प्रतिक्रमण, कायोत्सर्ग व प्रत्याख्यान।)

प्रश्न अन्य मतों में प्रचलित संध्या आदि में और जैनों के आवश्यक में क्या अंतर है?

उत्तर दूसरे मतों में प्रचलित संध्यादि में केवल ईश्वर-स्मरण और प्रार्थना आदि की मुख्यता रहती है, ज्ञानादि धर्मों की स्मृति तथा अपने पापों के प्रतिक्रमण की मुख्यता नहीं रहती, पर जैनों के आवश्यक में ज्ञानादि धर्मों की स्मृति तथा अपने पापों के प्रतिक्रमण की मुख्यता है जो अंतरंग दृष्टि से (उपादान दृष्टि से) अधिक आवश्यक है, इसलिए जैन धर्म में प्रतिपादित आवश्यक विशेष प्रयोजन को लिए हुए होने से और बढ़कर है।

प्रश्न पाँचवा, छठा और सातवाँ व्रत प्रायः एक करण-तीन योग से क्यों लिए जाते हैं?

उत्तर क्योंकि श्रावक अपने पास मर्यादा उपरान्त परिग्रह हो जाने पर जैसे वह उसे धर्म या पुण्य में व्यय करता है, वैसे ही वह अपने पुत्र/पुत्री आदि को भी देने का ममत्व त्याग नहीं पाता। इसी प्रकार जिसका अब कोई स्वामी नहीं रह गया हो, ऐसा कहीं गड़ा हुआ परिग्रह मिल जाये, तो भी वह उसे अपने स्वजनों को देने का ममत्व त्याग नहीं पाता। अथवा अपने पुत्रादि, जिन्हें परिग्रह बाँटकर पृथक् कर अपने-अपने व्यवसाय में स्थापित कर दिया हो, उनको व्यावसायिक सलाह देने का प्रसंग भी उपस्थित हो ही जाता है।

इसी प्रकार छठें सातवें व्रत की भी स्थिति है, जैसे श्रावक अपनी की हुई दिशा की मर्यादा के उपरांत स्वयं तो नहीं जाता, पर कई बार उसे अपने पुत्रादि को विद्या, व्यापार, विवाह आदि के लिए भेजने का प्रसंग आ जाता है। ऐसे ही उपभोग-परिभोग वस्तुओं की या कर्मादानों की जितनी मर्यादा की है, उसके उपरांत तो वह स्वयं भोगोपभोग या कर्म नहीं करता, परन्तु उसे अपने पुत्रादि को कहने का अवसर आ जाता है। इसलिए श्रावक पाँचवें, छठे और सातवें व्रत का प्रायः 'मैं नहीं करूँगा' इतना ही व्रत ले पाता है, परन्तु 'मैं नहीं कराऊँगा', यों व्रत नहीं ले पाता। विशिष्ट श्रावक इन व्रतों को दो करण तीन योग आदि से भी ग्रहण कर सकते हैं।

प्रश्न ग्यारहवाँ व्रत, नवमें व्रत से विशिष्ट है फिर भी ग्यारहवें (पौषध) में तो निद्रा, निहार आदि की छूट है, परन्तु नवमें (सामायिक) में नहीं। यह विरोध क्यों?

उत्तर चूंकि सामायिक का काल तो एक मुहूर्त से लेकर आगे सुविधानुसार है। यह काल अल्प है, अतः वह इन छूटों के बिना भी हो सकती है। और यदि ये आगार सामायिक में रखे जायें तो फिर सामायिक में ज्ञान, दर्शन, चारित्र, तप की कोई आराधना नहीं हो पायेगी तथा पौषध अहोरात्रि या न्यूनतम चार प्रहर का होता है। अतः वह इन छूटों के बिना सामान्य लोगों को पालन करना कठिन होता है। शरीर का भी अपना एक विज्ञान है। इसका पालन किए बिना पौषध में ज्ञानादि की आराधना में समाधि नहीं रहेगी।

प्रश्न कायोत्सर्ग आवश्यक में सदा समान संख्या में लोगस्स का ध्यान क्यों नहीं किया जाता है?

उत्तर दैवसिक और रात्रिक प्रतिक्रमण में पिछले लगभग १५ मुहूर्त (१२ घण्टे) जितने अल्प समय में लगे अतिचारों की ही शुद्धि करनी होती है। अतः उस शुद्धि के लिए मात्र चार लोगस्स का ही ध्यान पर्याप्त होता है, पर पाक्षिक प्रतिक्रमण में १५ दिनों में लगे अतिचारों की शुद्धि करनी होती है, अतः चार लोगस्स से दुगुने ८ लोगस्स का ध्यान आवश्यक होता है तथा चातुर्मासिक में चार माह में लगे अतिचारों की एवं सांवत्सरिक में वर्षभर में लगे अतिचारों की शुद्धि करनी होती है। अतः क्रमशः तीन गुने १२ व पाँच गुने २० लोगस्स का ध्यान आवश्यक होता है। आचार्यों द्वारा इनकी संख्या उपर्युक्तानुसार निर्धारित की गई हैं।

प्रश्न संज्ञी पंचेन्द्रिय तिर्यच क्या अणुव्रतादि का पालन कर सकते हैं? यदि हाँ तो कैसे?

उत्तर संज्ञी पंचेन्द्रिय तिर्यच श्रावक के प्रथम से ग्यारहवें व्रत तक पालन कर सकते हैं। बारहवें अतिथि-संविभाग व्रत का पालन वे नहीं कर सकते हैं। किन्हीं जीवों को विशुद्ध परिणामों की प्रवृत्ति होने के कारण उनके ज्ञानावरणीय कर्म का विशेष क्षयोपशम होने से उन्हें जातिस्मरणज्ञान की प्राप्ति हो जाती है। उस जातिस्मरण से वे जानने लगते हैं कि मैंने पहले के मनुष्य भव में व्रत प्रत्याख्यान को ग्रहण कर भंग कर डाला था। फलस्वरूप मैं मरकर तिर्यच गति को प्राप्त हुआ हूँ। इस जन्म में भी

अगर मैं अपनी आत्मा का कुछ सुधार कर लूँ तो अच्छा है। ऐसा सोचकर वे जातिस्मरण से पहले लिए हुए अणुव्रत आदि का स्मरण करते हैं और फिर उनका पालन करते हैं।

प्रश्न जलचर जीव पानी में रहकर सामायिक-प्रतिक्रमण किस प्रकार कर सकते हैं?

उत्तर अपने मन में सामायिक आदि पालने का निश्चय कर ये जलचर जीव जब तक सामायिकादि व्रत का काल पूर्ण न हो जावे तब तक हलन-चलन नहीं करते, निश्चल रहते हैं और इस प्रकार उनके द्वारा यह व्रत पाला जाता है।

प्रश्न प्रथम पद की वंदना में जघन्य बीस तथा उत्कृष्ट एक सौ साठ तथा एक सौ सत्तर तीर्थंकर जी की गणना किस प्रकार की गई है ?

उत्तर महाविदेह क्षेत्र कुल पाँच होते हैं। इनमें सदैव चौथे आरे जैसी स्थिति होती है एवं यहाँ तीर्थंकरों का सद्भाव भी शाश्वत कहा गया है। प्रत्येक महाविदेह क्षेत्र के मध्य में मेरुपर्वत है। इस कारण से पूर्व और पश्चिम के रूप में इनके दो विभाग हो जाते हैं। पूर्व महाविदेह के मध्य में सीता नदी और पश्चिम महाविदेह के मध्य में सीतोदा नदी के आ जाने से एक-एक के पुनः दो-दो विभाग हो जाते हैं। अतः प्रत्येक महाविदेह के चार विभाग हो गए। प्रत्येक विभाग में आठ-आठ विजय हैं। अतः एक महाविदेह में $4 \times 8 = 32$ एवं पाँच महाविदेह में $32 \times 5 = 160$ विजय होते हैं। प्रत्येक विभाग में जघन्य एक तीर्थंकर होते हैं, अतः जम्बूद्वीप के महाविदेह में 8, धातकीखण्ड एवं अर्द्धपुष्कर द्वीप के महाविदेह में 4-4 तीर्थंकर जघन्य होते ही हैं। इस प्रकार यह जघन्य 20 का कथन हुआ। जब उत्कृष्ट तीर्थंकरों की संख्या हो तो प्रत्येक विजय में एक-एक यानी 160 एवं उसी समय यदि पाँच भरत एवं पाँच एरावत में भी एक-एक यानी कुल 10 तो ये सब मिलाकर 170 तीर्थंकर उत्कृष्ट एक साथ हो सकते हैं।

प्रश्न चौथे प्रतिक्रमण आवश्यक में कभी बाँया एवं कभी दाँया घुटना ऊँचा क्यों किया जाता है?

उत्तर चौथे प्रतिक्रमण आवश्यक में व्रतों में लगे हुए अतिचारों की आलोचना एवं व्रत धारण की प्रतिज्ञा का स्मरण किया जाता है। व्रतों की आलोचना के लिए मन-वचन-काया से विनय अर्पणता आवश्यक है। बायाँ घुटना विनय का प्रतीक होने से व्रतों में लगे हुए अतिचारों की आलोचना के समय बाँया घुटना खड़ा करके बैठते हैं अथवा खड़े होते हैं। श्रावकसूत्र में व्रत-धारण रूप प्रतिज्ञा की जाती है। प्रतिज्ञा-संकल्प में वीरता की आवश्यकता है। दायाँ घुटना वीरता का प्रतीक होने से इस समय दायाँ घुटना खड़ा करके व्रतादि के पाठ बोले जाते हैं।

प्रश्न चौरासी लाख जीवयोनि के पाठ में १८,२४,१२० प्रकारे 'मिच्छामि दुक्कडं' दिया जाता है। ये प्रकार किस तरह से बनते हैं?

उत्तर जीव के ५६३ भेदों को अभिहया, वत्तिया आदि १० विराधना से गुणा करने पर ५६३० भेद बनते

हैं। अब ये या तो राग रूप या द्वेष रूप अतः इन दो से गुणा करने पर ११२६० भेद बने। फिर इनको मन-वचन एवं काया इन तीन योगों से गुणा किया तो ३३७८० भेद हुए। पुनः तीन करण से गुणित करने पर १०१३४० भेद बने। तीन काल से गुणा करने पर ३०४०२० भेद हुए। ये सब पंच परमेष्ठी और आत्मसाक्षी से होते हैं अतः ६ से गुणा करने पर १८,२४,१२० प्रकार बनते हैं। वस्तुतः जैन धर्म में अपने दोष-दर्शन का सूक्ष्मतम विवेचन प्रकट हुआ है।

$$५६३(\text{जीव के भेद}) \times १०(\text{विराधना}) \times २(\text{राग-द्वेष}) \times ३(\text{योग}) \times ३(\text{करण}) \times ३(\text{काल}) \times ६(\text{साक्षी}) = १८,२४,१२०$$

प्रश्न ८४ लाख जीवयोनि के पाठ में बतलाए गए पृथ्वीकायादि के सात लाख आदि भेद किस प्रकार बनते हैं?

उत्तर योनि का शाब्दिक अर्थ होता है- उत्पत्ति स्थल। जीवों के उत्पत्ति स्थल को जीव योनि कहा गया। ये स्थल (योनि) भाँति-भाँति के वर्ण-गंध-रस-स्पर्श-संस्थान से युक्त होते हैं। यहाँ पृथ्वीकायादि जीवों के मूलभेदों में पाए जाने वाले वर्णादि की सर्व संभाव्यता की विवक्षा से यह कथन किया गया है। जिसे निम्न सारणी अनुसार समझा जा सकता है।

८४ लाख

प्रश्न आवश्यक सूत्र में छह आवश्यकों का क्रम इस प्रकार क्यों रखा गया है?

उत्तर आवश्यक में साधना का जो क्रम रखा गया है, वह कार्य-कारण भाव की शृंखला पर अवस्थित है तथा पूर्णतः वैज्ञानिक है। साधक के लिए सर्वप्रथम समता को प्राप्त करना आवश्यक है। बिना समता को अपनाए सदगुणों के सरस सुमन खिलते नहीं और अवगुणों के काँटे झड़ते नहीं। जब अन्तर्हृदय में विषमभाव की ज्वालाएँ धधक रही हों तब वीतरागी महापुरुषों के गुणों का उत्कीर्तन कैसे संभव है? समत्व को जीवन में धारण करने वाला व्यक्ति ही महापुरुषों के गुणों का संकीर्तन करता है और उनके उदात्त गुणों को जीवन में उतारता है। इसलिए सामायिक आवश्यक के पश्चात् चतुर्विंशति आवश्यक का क्रम रखा गया है।

जब गुणों को व्यक्ति हृदय में धारण करता है, तभी उसका सिर महापुरुषों के चरणों में झुकता है। भक्ति-भावना से विभोर होकर वह उन्हें वंदन करता है इसलिए तृतीय आवश्यक में वन्दना को रखा गया। वन्दना करने वाले साधक का हृदय सरल होता है, खुली पुस्तक की तरह वह अपने दोषों/अतिचारों का अवलोकन कर खेद प्रकट करता है। सरल व्यक्ति ही कृत दोषों की आलोचना करता है। अतः वन्दना के पश्चात् चौथा क्रम प्रतिक्रमण का रखा गया है।

भूलों को स्मरण कर उन भूलों से मुक्ति पाने के लिए तन एवं मन में स्थिरता आवश्यक है। कायोत्सर्ग में तन और मन की एकाग्रता की जाती है और स्थिर वृत्ति का अभ्यास किया जाता है। जब तन और मन स्थिर होता है, तभी प्रत्याख्यान किया जा सकता है। मन डाँवाडोल स्थिति में हो, तब प्रत्याख्यान संभव नहीं है। इसीलिए 'प्रत्याख्यान आवश्यक' का स्थान छठा रखा गया है।

इस प्रकार यह षडावश्यक आत्मनिरीक्षण, आत्मपरीक्षण और आत्मोत्कर्ष का श्रेष्ठतम उपाय है।

प्रश्न 'इच्छामि ठामि' के पाठ में योगों का क्रम काइओ, वाइओ, माणसिओ इस प्रकार से क्यों रखा गया है?

उत्तर मन के योग में चिंतन मनन की, वचन योग में कीर्तन-गुणगान की एवं काय योग में शारीरिक प्रवृत्तियों की प्रधानता होती है। जिस पाठ में प्रधानता मन की हो, यानी चिंतन-मनन-निंदा-आलोचना की हो वहाँ प्रथम स्थान मनोयोग को दिया जाता है जैसे बारह वतों के अतिचारों की आलोचना के समय मणसा-वयसा-कायसा बोला जाता है तथा लोगस्स के पाठ में चौबीस तीर्थंकरों की स्तुति की गई है। वहाँ कितिय-वंदिय- महिया कहा गया, क्योंकि वचन योग से कीर्तन, काय योग से वन्दन एवं मन योग से पूजन किया गया है। अतः वहाँ वचन योग को प्रधानता दी गई है।

'इच्छामि ठामि' के पाठ को कायोत्सर्ग की साधना के पूर्व में बोला जाता है और

कायोत्सर्ग में काया के व्यापार के उत्सर्ग की प्रधानता है। अतः यहाँ काइओ-वाइओ-माणसिओ कहा गया। इसी प्रकार 'तस्स उत्तरी' का पाठ भी कायोत्सर्ग से पूर्व बोला जाता है वहाँ भी सर्वप्रथम 'ठाणेणं' यानी शरीर को स्थिर करके फिर 'मोणेणं' यानी वचन योग को एवं तब 'झाणेणं' यानी ध्यान लगाकर मनोयोग को नियंत्रित किया जाता है।

प्रश्न प्रतिक्रमण से मोक्ष की प्राप्ति किस प्रकार संभव है?

उत्तर आत्मा को परमात्मा बनने में सबसे बड़ी रुकावट उसके साथ लगे हुए कर्म ही हैं। ये संचित कर्म तप के द्वारा क्षय किये जाते हैं एवं नये आने वाले कर्मों को संवर द्वारा रोका जाता है। दशवैकालिक सूत्र में वर्णित है कि 'खवित्ता पुव्वकम्माइं तवेण य संजमेण।' प्रतिक्रमण में प्रथम आवश्यक द्वारा संवर की, द्वितीय एवं तृतीय आवश्यक में विनयतप की, चतुर्थ आवश्यक में प्रायश्चित्त तप की, पंचम आवश्यक में कायोत्सर्ग तप की एवं छठे आवश्यक में संवर की साधना की जाती है। अर्थात् आवश्यक में तप एवं संवर की आराधना होती है जिससे स्पष्ट होता है कि यह जीवन को सुधारने का श्रेष्ठ उपक्रम है, आध्यात्मिक जीवन की धुरी है। आत्मदोषों की आलोचना करने से पश्चात्ताप की भावना जागृत होने लगती है और उस पश्चात्ताप की अग्नि से सभी दोष जलकर नष्ट हो जाते हैं।

प्रश्न ६४ इन्द्र किस प्रकार होते हैं? समझाइये।

उत्तर इन्द्र देवगति में ही होते हैं। चार प्रकार के देवता कहे गए हैं- भवनपति, व्यंतर, ज्योतिषी और वैमानिक। भवनपति में उत्तर दिशा एवं दक्षिण दिशा में १०-१० यानी कुल २० तथा इसी प्रकार व्यंतर में १६ x २ = ३२ इन्द्र होते हैं। ज्योतिषी में चन्द्र और सूर्य में दो इन्द्र होते हैं। वैमानिक में प्रथम से आठवें देवलोक तक एक-एक इन्द्र एवं नौवें-दसवें तथा ग्यारहवें-बारहवें देवलोक का एक-एक कुल १० इन्द्र हुए। इस प्रकार चारों जाति के क्रमशः २०+३२+२+१० = ६४ इन्द्र होते हैं।

प्रश्न 'इच्छामि ठामि' के पाठ में कभी तो 'इच्छामि ठामि काउस्सणं' कभी 'इच्छामि ठामि आलोउं' एवं कभी 'इच्छामि ठामि पडिक्कमिउं' बोला जाता है। यह अंतर क्यों?

उत्तर कायोत्सर्ग की साधना के पूर्व में 'इच्छामि ठामि काउस्सणं' बोला जाता है क्योंकि कायोत्सर्ग की साधना की जा रही है। ध्यान के अंदर 'इच्छामि ठामि आलोउं' बोलते हैं क्योंकि दोषों/अतिचारों की आलोचना की जा रही है एवं प्रतिक्रमण आवश्यक में प्रतिक्रमण की प्रधानता के कारण 'इच्छामि ठामि पडिक्कमिउं' बोला जाता है।

- १९२ बी, मीटरगेट लोको के सामने, मीटरगेज रेलवे कॉलोनी,
बजरिया, सवाईमाधोपुर (राज.)